6391

सर्वोदय पुस्तकमाला, पुष्प-२

आचार्य कुन्दकुन्द

एक परिचय

लेखक
पं० भँवरलाल पोल्याका

प्रकाशक
जैनविद्या संस्थान
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी
राजस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वोदय पुस्तकमाला, पुष्प-२

आचार्य कुन्दकुन्द

एक परिचय

लेखक

पं० भँवरलाल पोल्याका

प्रकाशक

जैनविद्या संस्थान

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी

राजस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

☐ प्रकाशक

जैनविद्या संस्थान

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी
श्रीमहावीरजी-322220 (राज०)

☐ प्राप्तिस्थान

1. जैनविद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी
2. मन्त्री कार्यालय, महावीर भवन
   सवाई मानसिंह हाईवे, जयपुर-302003

☐ प्रथम बार, 1988
2,000

☐ मूल्य 2.00 रु०

☐ मुद्रक

कुशल प्रिंटर्स

गोधों का रास्ता, किशनपोल बाजार
जयपुर-302003, फोन : 76052

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

आचार्य कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परम्परा में मूलसंघ के प्रमुख आचार्य हैं। प्रत्येक दिगम्बर जैन गृहस्थ, पण्डित, साधु अपने को 'कुन्दकुन्दान्वयी' बताने में गौरव का अनुभव करता है। द्रव्यानुयोग के आद्यप्रणेता आचार्य कुन्दकुन्द ने भगवान् महावीर के मूलमार्ग को अपने ग्रन्थों में गूंथा है, स्पष्ट किया है और उसे सुरक्षित रखा है। आचार्यश्री ने दो हजार वर्ष पूर्व जैन वाङ्मय के प्रणयन को गति प्रदान की जिसके लिए समस्त अध्यात्मजगत् उनका चिर-ऋणी है।

आज देश में सर्वत्र उनका द्विसहस्राब्दि वर्ष विभिन्न आयोजनों/समारोहों/प्रवृत्तियों के साथ मनाया जा रहा है।

आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थ और उनकी टीकाओं के बड़े-बड़े संस्करण बहुतायत से प्राप्त हैं। गूढ़ एवं गम्भीर होने से वे श्रम-साध्य और समयसाध्य हैं। अध्यात्मप्रेमी तो उनका रसपान करते हैं पर आज की भौतिक दौड़ में व्यस्त रहनेवाले सामान्य मनुष्य भी आचार्यश्री के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से परिचित हों, कुछ प्रेरणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लें इसी उद्देश्य से उनके द्विसहस्राब्दि वर्ष के अवसर पर यह लघु पुस्तिका प्रकाशित की जा रही है।

संस्थान द्वारा 'सर्वोदय पुस्तकमाला' योजना के अन्तर्गत जन-सामान्य के लाभार्थ जैनधर्म एवं दर्शन से सम्बन्धित अत्यन्त सरल एवं सुरुचिपूर्ण शैली में पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं। प्रस्तुत पुस्तिका उसी पुस्तकमाला का द्वितीय पुष्प है।

इसके लेखक हैं संस्थान में कार्यरत विद्वान् पण्डित भंवरलाल पोल्याका जैनदर्शनाचार्य, साहित्यशास्त्री। इस लघु पुस्तिका में उन्होंने लगभग सभी ज्ञातव्य तथ्यों को समाहित कर इसे सर्वोपयोगी बनाया है। इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

पुस्तक प्रकाशन में सहयोगी मुद्रणकर्त्ता भी धन्यवादार्ह है।

जयपुर
महावीर जयन्ती
चैत्र शुक्ला १३, वी. नि. सं. २५१४
३१-३-१९८८

ज्ञानचन्द्र खिन्दूका
संयोजक
जैनविद्या संस्थान समिति
श्रीमहावीरजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य कुन्दकुन्द : एक परिचय

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ।।

किसी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व अपने इष्ट का स्मरण करना, गुणानुवाद गाना, वन्दन/नमस्कार करना मानवीय संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता है। यह मानसिक, कायिक अथवा मौखिक किसी भी रूप में हो सकता है। जिससे पापों का नाश और सुख की प्राप्ति हो वह मंगल कहलाता है और इसके लिए की गई क्रिया मंगलाचरण। लोक में ऐसा विश्वास प्रचलित है कि मंगलाचरण से प्रारम्भ किया गया कार्य बिना विघ्न के समाप्त होता है। जो ईश्वर को कर्त्ता-हर्त्ता मानते हैं उनका विश्वास है कि मंगलाचरण-पूर्वक कार्य करनेवालों की ईश्वर सहायता करता है, उनकी इच्छा पूरी करता है, उद्देश्य सफल करता है। जैन कर्ता-हर्त्ता ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करते अतः वे मानते हैं कि महान् आत्माओं की भक्ति तथा गुणगान करने से चित्त में जो एक विशेष प्रकार की निर्मलता आती है उससे शुभकर्मों का आस्रव होकर पुण्यबंध होता है और उसके फलस्वरूप कार्य निर्विघ्न समाप्त होता है।

उक्त श्लोक में भगवान् महावीर, गौतम गणधर, कुन्दकुन्दाचार्य तथा जैनधर्म का मंगलरूप में स्मरण किया गया है। किसी भी ग्रंथ का स्वाध्याय करने सेप हले तो यह श्लोक पढ़ा ही जाता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुंकुमपत्रिकाओं, वैवाहिक निमन्त्रण-पत्रों आदि में और भाषण आरम्भ करने से पूर्व भी यह श्लोक लिखा, पढ़ा अथवा बोला जाता है। प्रश्न है—अब तक हुए अनेक तीर्थंकरों, गणधरों, आचार्यों में से केवल तीर्थंकर वीर, गौतम गणधर तथा आचार्य कुन्दकुन्द का ही मंगलरूप में स्मरण क्यों किया गया, औरों का क्यों नहीं किया ?

मानवीय स्वभाव है कि जिससे उसका हित-साधन होता है, जिसके साथ उसका निकटतम सम्पर्क अथवा लगाव होता है, जिससे उसको वात्सल्य मिलता है अथवा जो उपकारक हैं, हित-कारक हैं—किसी शुभ अवसर पर या किसी भी प्रकार का कष्ट, विपत्ति, विघ्न आदि होने पर सबसे पहले वह उसीका स्मरण करता है, उसी को पुकारता है।

वर्तमान में हम पर भगवान् महावीर का महान् उपकार है। हम उन्हीं के शासन में रह रहे हैं। एक तीर्थंकर के निर्वाण के पश्चात् जब तक दूसरा तीर्थंकर इस धरा पर नहीं होता तब तक पहले निर्वाण-प्राप्त तीर्थंकर का शासन चलता है। उनका दिया उपदेश, उनका बताया मार्ग ही हमारे आत्मकल्याण के लिए पथ आलोकित करता है, हमें कुपथ से हटा सन्मार्ग की ओर चलने की प्रेरणा देता है, हम में हेय-उपादेय का विवेक जागृत करता है।

इस समय अवसर्पिणी का पंचमकाल चल रहा है। भगवान् महावीर इसी अवसर्पिणी के अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर थे, मुक्ति-मार्ग के नेता थे, अष्टकर्मों के भेत्ता थे, हितोपदेशी थे, केवलज्ञानी थे। उन्ही की वाणी-गंगा से निकले द्वादशांगवाणीरूप अमृतजल का कुछ अंश संसार के संतप्तजनों को शांति सुलभ कराने हेतु आज भी उपलब्ध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकरों की दिव्य-वाणी से जितना अंश निःसृत होता है उसे मुख्य गणधर धारण कर बारह भागों में क्रमबद्ध करते हैं। भगवान् महावीर की वाणी को गौतम गणधर ने धारण किया था इसीलिए उनके अन्य गणधरों की अपेक्षा गौतम गणधर को अधिक महत्त्व प्राप्त है।

शास्त्रकारों ने सम्पूर्ण श्रुत को दो भागों में बांटा है—१. अंग-प्रविष्ट और २. अंगबाह्य। गौतम गणधर ने भगवान् महावीर की वाणी को धारण करके उसे क्रमबद्ध करके बारह अंगों में विभक्त किया वे अंगप्रविष्ट तथा उनके शिष्यों, प्रशिष्यों, आचार्यों आदि द्वारा उसके आधार पर रचे गये ग्रंथ 'अंगबाह्य' कहे जाते हैं।

यहां यह बात स्मरणीय है कि तीर्थंकर वे चाहे किसी भी काल में हों शाश्वत सत्यों का, वस्तुस्वभावस्वरूप धर्म का तो समान रूप से व्याख्यान करते हैं किन्तु प्रत्येक तीर्थंकर अपने-अपने देश, काल और मानव की बुद्धि आदि परिस्थितियों का ध्यान कर उसके अनुसार व्यवहार धर्म का उपदेश देते हैं।

तीर्थंकर 'जिन' कहलाते हैं क्योंकि वे कर्मरूपी शत्रुओं को जीतकर सांसारिक बन्धनों से मुक्तिलाभ करते हैं। उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म 'जैनधर्म' कहलाता है। अहिंसामूलक विचार, आचार, स्याद्वादमूलक उच्चार और अपरिग्रहमूलक समाज इन चार स्तम्भों पर इसका सम्पूर्ण ढांचा खड़ा है, सर्वप्राणिसमभाव से इसका निर्माण हुआ है, इसलिए यह सर्वोदय तीर्थ है, मंगलस्वरूप है।

भगवान् महावीर के मोक्षगमन के पश्चात् ६८३ वर्षों तक आचार्यों को श्रुतज्ञान मौखिक रूप से अपनी गुरुपरम्परा से प्राप्त होता रहा। आचार्य भद्रबाहु 'प्रथम' अन्तिम श्रुतकेवली थे। इनके समय में उत्तर भारत में बारह वर्ष का भयंकर अकाल पड़ा और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये ससंघ दक्षिण में चले गये। उस अकाल में शेष रहे त्यागी-मुनियों के आचरण में शिथिलता आ गई और तभी भगवान् महावीर के उपासक दिगम्बर और श्वेताम्बर इन दो परम्पराओं में विभक्त हो गये।

काल-प्रवाह के साथ-साथ लोगों की धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही स्मरणशक्ति से ग्यारह अंगों का ज्ञान तो लुप्तप्रायः ही हो गया। बारहवें अंग 'दृष्टिवाद' के पांच भेदों—१. परिकर्म, २. सूत्र, ३. प्रथमानुयोग, ४. पूर्वगत और ५. चूलिका में से केवल चौथे भेद 'पूर्वगत' के कुछ अंशों के ज्ञाता ही शेष रहे।

पूर्वगत के चौदह भेद हैं[1] उनमें से पांचवें पूर्व के एक अंश का ज्ञान आचार्य कुन्दकुन्द को अपनी गुरु-परम्परा से प्राप्त हुआ। आचार्य कुन्दकुन्द की रचनाओं का सम्बन्ध द्रव्यानुयोग एवं चरणानुयोग से है[2]। आत्मा और तत्त्व का विभिन्न दृष्टिकोणों से

---

[1] १. उत्पाद, २. अग्रायणी, ३. वीर्यप्रवाद, ४. अस्तिनास्तिप्रवाद, ५. ज्ञानप्रवाद, ६ सत्यप्रवाद, ७. आत्मप्रवाद, ८. कर्मप्रवाद ९. प्रत्याख्यानप्रवा,द १०. विद्यानुवाद, ११. कल्याण, १२. प्राणावाय १३. क्रियाविशाल और १४. लोकबिन्दुसार।

[2] जैन धार्मिक साहित्य की चार विधाएं हैं—

१. प्रथमानुयोग=जैन इतिहास। इसमें उन महापुरुषों की चरित-कथाएं होती हैं जिन्होंने आत्मशोधन कर मुक्ति को प्राप्त कर लिया है या प्राप्त करनेवाले हैं।

२. करणानुयोग=जैन भूगोल। इसमें पृथ्वी, लोक-अलोक आदि का वर्णन होता है।

३. चरणानयोग=जैन नीतिशास्त्र या आचारशास्त्र। इसमें मानव के कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निरूपण होता है।

४. द्रव्यानुयोग=जैन तत्त्वविज्ञान। इसमें लोक में विद्यमान द्रव्य, तत्त्व पदार्थ व उनकी व्यवस्था का वर्णन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वांगीण वर्णन कर इन्होंने अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है। आज दिगम्बर परम्परा में द्रव्यानुयोग एवं चरणानुयोग सम्बन्धी जितना भी साहित्य उपलब्ध है उसका मूल-स्रोत आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथ ही हैं।

भगवान् महावीर की परम्परा में होनेवाले सर्वसाधुओं में आचार्य कुन्दकुन्द का स्थान सर्वोपरि है, वे सर्वाधिक आदरणीय हैं, उनकी विद्वत्ता व प्रतिभा अतुलनीय है। अध्यात्मवेत्ताओं में उनका स्थान सबसे ऊपर है। वे ज्ञान, ध्यान व तप में लीन रहनेवाले साधु थे। उनका जीवन अध्यात्ममय था। साधु के आचरण में तनिक भी शिथिलाचार उन्हें सहन नहीं था।

उनकी रचनाओं की तरह ही 'षट्खण्डागम' का भी सीधा सम्बन्ध भगवान् महावीर की दिव्यवाणी से है अतः आचार्य कुन्दकुन्द का एवं षट्खण्डागम के कर्त्ता पुष्पदन्त-भूतबलि आदि आचार्यों का महत्त्व एक-दूसरे से कम-अधिक नहीं आंका जा सकता किन्तु आत्मा के उत्थान का सम्बन्ध द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग से अधिक है अतः हमारे हित की दृष्टि से आचार्य कुन्दकुन्द का महत्त्व सहज ही बढ़ जाता है। दिगम्बर परम्परा में वे गौतम गणधर के पश्चात् प्रतिष्ठापित हैं, वे प्रातःस्मरणीय, वन्दनीय एवं पूज्य समझे जाते हैं। प्रारम्भ में दिया गया श्लोक—

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

इस बात का असंदिग्ध प्रमाण है।

इस श्लोक के दो पाठ प्रचलित हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"·····मंगलं कुन्दकुन्दार्यो·····" एवं "·····मंगलं कुन्द-कुन्दाद्यो·····", ये दोनों ही पाठ सही हैं।

इसमें तो सन्देह नहीं कि कुन्दकुन्दाचार्य अपने समय के अभूत-पूर्व प्रतिभाशाली, अपूर्व ज्ञानी, श्रुतमर्मज्ञ, प्रौढ़ रचनाकार आदि अनेक विशेषताओं से सम्पन्न एक युगान्तरकारी दिगम्बर आचार्य थे। भगवान् महावीर की दिगम्बर परम्परा को जीवित रखने में उनका बहुत बड़ा योगदान था। वे भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट दिगम्बर मुनि धर्म और आचार का स्वयं पालन करते थे और दूसरे साधुओं से भी ऐसी ही अपेक्षा रखते थे। आज जिनवाणी का जो कुछ और जितना भी आध्यात्मिक एवं आचार सम्बन्धी अंश प्राप्त है उसका आधार उनके ग्रन्थ ही हैं। यदि वे रचना न करते तो दिगम्बर परम्परा में जिनवाणी का, भगवान् महावीर की द्वादशांग वाणी का जो थोड़ा-बहुत अंश प्राप्य है जिसके सहारे दिगम्बर परम्परा आज तक जीवित है, वह अंश भी प्राप्य नहीं होता और दिगम्बर परम्परा जीवित नहीं रहती। इस दृष्टि से वे दिगम्बर परम्परा के रक्षक थे, मार्गदर्शक थे, उनकी यह विशेषता, हमारे प्रति उनका यह उपकार ही उन्हें गौतम गणधर के पश्चात् स्मरणीय बनाता है। इनमें एक द्वादशांग श्रुत के परिष्कर्ता थे तो दूसरे उसके रक्षक।

आत्मोत्थान में रत साधु अपनी ख्याति, लाभ, पूजा, प्रशंसा आदि की वांछा नहीं रखते। आज ऐसे सैकड़ों साधुओं का जीवन-इतिहास काल के अज्ञात सागर में डूबा हुआ है जिन्होंने मानव-जाति के अंधकारपूर्ण मानस को अपनी रचनाओं और उपदेशों द्वारा ज्ञान की ज्योति से प्रकाशित किया है। अपने सम्बन्ध में कुछ कहना अथवा लिखना उनकी प्रकृति के प्रतिकूल था। कुन्दकुन्दा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार्य भी ऐसी महान् विभूतियों में से थे जिन्होंने अपने व्यक्तित्व अथवा जीवन के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा।

आराधनाकथाकोष (१५वीं शताब्दी) व पुण्याश्रवकथाकोष के अनुसार उनका जन्म पिडथनाडू प्रदेश के कुरुमरई ग्रामवासी करमण्डु नामक वैश्य के घर हुआ था। इनकी माता का नाम श्रीमती था। ये अपने पूर्वजन्म में इसी दम्पति के यहां ग्वाल थे। दम्पति के कोई सन्तान न थी। एक दिन ग्वाला जंगल में गायें चराने गया तो उसे एक सन्दूक में बन्द कुछ आगमग्रन्थ मिले। ग्वाले ने उन्हें बड़ी साज-सँवार एवं भक्ति-भाव से सुरक्षित रखा। एक बार जब गृहस्वामी करमण्डु के घर एक दिगम्बर मुनिराज आहार के लिए आये तो ग्वाले ने वे ग्रंथ उन्हें भेंट कर दिये। मुनिराज ने बताया कि सेठ के आहारदान और ग्वाले के ज्ञानदान के फलस्वरूप यह ग्वाला मरकर इसी सेठ के घर पुत्ररूप में जन्म लेगा। कालान्तर में सेठ को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। वही पुत्र दीक्षित होकर 'आचार्य कुन्दकुन्द' के रूप में सुप्रसिद्ध हुआ।

कुंदकुंद कब हुए इस सम्बन्ध में विद्वानों में कुछ मतभेद था किन्तु डॉ. ए. एन. उपाध्ये ने पर्याप्त विचार कर इनका समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के द्वितीयार्ध से ईसा की प्रथम शताब्दी के प्रथमार्ध तक सिद्ध किया है। यह मत इतिहास सम्मत है और विद्वानों द्वारा पुष्ट भी।

मूलसंघ नंद्याम्नाय बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ कुंदकुंदान्वय की पट्टावली[1] की प्रतिलिपि के अनुसार—

---

[1] चारित्रसार, प्र.–दिगम्बर जैन समाज, सीकर, वी. नि. सं. २५०१ पृष्ठ ३०५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"·····श्री कुंदकुंदाचार्य का गृहस्थ अवस्था का काल ११ वर्ष रहा, दीक्षाकाल ३३ वर्ष, पटस्थकाल ५१ वर्ष १० माह १० दिन, विरह दिन ५, इस प्रकार से ९५ वर्ष १० माह १५ दिन सम्पूर्ण आयु थी। श्री कुंदकुंदाचार्य के ही निम्नांकित चार नाम और थे—

१. श्री पद्मनन्दि २. श्री वक्रग्रीव, ३. गृद्धपिच्छ और ४. श्री इलाचार्य (एलाचार्य)।"

इस सन्दर्भ में एक श्लोक भी है—

आचार्य कुन्दकुन्दाख्यो वक्रग्रीवो महामुनिः।

एलाचार्यो गृद्धपिच्छः पद्मनन्दी वितायते॥

इसमें कोई विरोध नहीं है कि आचार्यश्री का कुन्दकुन्द नाम उनके जन्मस्थान अथवा निवासस्थान 'कोण्डकुंदी' के कारण विख्यात हुआ।

जनश्रुति है कि सीमंधरस्वामी के समवसरण में जाते समय अपनी मयूरपिच्छिका मार्ग में कहीं गिर जाने पर इन्होंने गिद्ध के पंखों की पीछी धारण कर ली थी, इस कारण इनका गृद्धपिच्छ नाम प्रसिद्ध हो गया। किन्तु यह नाम प्रचार/प्रसिद्धि में बहुत कम आया क्योंकि आचार्य उमास्वाति भी इसी उपनाम से प्रसिद्ध थे।

आचार्यश्री सीमंधरस्वामी के समवसरण में उपस्थित विदेहवासियों के मुकाबले छोटा (वहां होने वाली इलायची जितना) शरीर होने के कारण समवसरण में उपस्थित श्रोताओं ने सीमंधरस्वामी से पूछा कि यह इला (इलायची) जैसे कदवाला मनुष्य कौन है? सीमंधरस्वामो ने इनका परिचय दिया। तभी से इनका नाम इलाचार्य (एलाचार्य) उपनाम प्रसिद्ध हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वक्रग्रीव नाम के सम्बन्ध में भी दो जनश्रुतियां प्रचलित हैं—

१. सीमंधरस्वामी का समवसरण इतना ऊंचा था कि उनका दिव्य उपदेश सुनने के लिए उनको अपनी गर्दन ऊंची रखनी पड़ी जिससे अकड़कर उनकी गर्दन टेढ़ी हो गई।

२. वे सदा शास्त्र-लेखन/पठन में दत्तचित्त रहते थे, अतः सदा झुकी रहने से ही उनकी गर्दन (ग्रीवा) टेढ़ी हो गई। कहा जाता है बाद में आचार्यश्री ने अपने योगबल से अपनी गर्दन का बांकपन ठीक कर लिया था। कुछ भी सही, इससे इतना तो स्पष्ट है कि वे सदा ही ज्ञान, ध्यान और तप में लीन रहनेवाले सच्चे दिगम्बर साधु थे।

आचार्य कुन्दकुन्द ने इस भारतभू को अपने जन्म से उस समय पवित्र किया जब जैनसंघ दो भागों में विभक्त हो चुका था। मानव का स्वभाव है कि वह कुमार्ग की ओर सरलता से आकृष्ट होता है, झुकता है, बहते पानी की तरह बिना प्रयत्न ही पतन की ओर चल पड़ता है। जैनसंघ की उस पतन की ओर उन्मुख प्रवृत्ति की आचार्यश्री ने तीव्र शब्दों में भर्त्सना की और उसे रोकने का भरसक प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने शिथिलाचारियों को तो 'ज्ञान' के अधिकार का अपात्र माना ही साथ ही उन शिथिलाचारियों को नमस्कार करनेवालों, उनका आदर करनेवालों को भी अपात्र बताया। उन्होंने दर्शन पाहुड़ में कहा है—

जे दंसणेसु भट्ठा पाए पाडंति दंसणधराणं।
ते होंति लल्लमूआ बोही पण दुल्लहा तेसिं ॥१२॥

जे वि पडंति च तेसिं जाणंता लज्जागारवभयेण।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं ॥१३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् जो दर्शन (श्रद्धा) से भ्रष्ट हैं और दर्शनधारियों से अपने को नमस्कार करवाते हैं वे (परभव में) लूले-गूंगे होते है। उन्हें बोधि की प्राप्ति दुर्लभ है ॥ १२ ॥ जो लज्जा, प्रतिष्ठा अथवा भय से जानते हुए भी उन दर्शनहीनों के चरणों में पड़ते हैं, उन्हें नमस्कार करते हैं, पाप का अनुमोदन करनेवाले होने के कारण उनको भी बोधि प्राप्त नहीं होती ॥१३॥

मुमुक्षु की लक्ष्यपूर्ति में पुण्य और पाप को 'सोने की बेड़ी' और 'लोहे की बेड़ी' कहकर आचार्य कुन्दकुन्द ने दोनों को समकक्ष मानकर समस्त अध्यात्मजगत् में एक क्रांतिकारी उद्घोषणा की है जो जैनदर्शन की एक अनूठी एवं मौलिक देन है।

रचनाएं

१. **पंचास्तिकाय संग्रह**—जैसा कि नाम से ही प्रकट है इसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश इन पांच अस्तिकायों का कथन किया गया है। इस पर अमृतचन्द्राचार्य तथा जयसेनाचार्य की संस्कृत टीकाएं हैं।

२. **प्रवचनसार**—इसमें प्रकृष्टों/अर्हन्तों के प्रवचनों का सार निबद्ध है। इस ग्रंथ पर आचार्य अमृतचन्द्र की तत्त्वप्रदीपिका, जयसेनाचार्य की तात्पर्यवृत्ति टीकाएं हैं।

३. **समयसार**—इसमें शुद्धनय का आश्रय लेकर नवतत्त्वों का विवेचन किया गया है। यह ग्रंथ 'शुद्ध आत्मतत्त्व' का प्रतिपादन करता है। इस पर भी आचार्य अमृतचन्द्र और जयसेन की टीकाएं उपलब्ध हैं।

४. **नियमसार**—इस रचना में रत्नत्रय, छह द्रव्य, नवतत्त्व,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचास्तिकाय का स्वरूप बताया गया है। इस पर पद्मप्रभमलधारी-देव की टीका है।

५. **बारसअणुवेक्खा**—इसमें ९१ गाथाओं में बारह भावनाओं का बड़ा मार्मिक, वैराग्य-उत्पादक वर्णन है।

६. **पाहुड़**—ऐसा कहा जाता है कि आचार्यश्री ने ८४ पाहुड़ों की रचना की थी। वर्तमान में केवल निम्न आठ पाहुड़ प्राप्त हैं—

१. दंसणपाहुड़, २. चारित्तपाहुड़, ३. सुत्तपाहुड़, ४. बोह-पाहुड़, ५. भाव पाहुड़, ६. मोक्खपाहुड़, ७. लिंगपाहुड़ और ८. सील पाहुड़।

ये आठों पाहुड़ अट्ठपाहुड़ (अष्टप्राभृत) के नाम से प्रकाशित हैं, प्रसिद्ध हैं। इनमें शिथिलाचार, विवेकहीनता एवं अंधश्रद्धा का खण्डन किया गया है।

७. **भक्तियां**—सिद्धभक्ति, सुदभक्ति, चारितभक्ति, जोइभक्ति, आइरियभक्ति, णिव्वाणभक्ति, पंचगुरुभक्ति तथा तित्थयरभक्ति ये आठ भक्तियां हैं जिनमें उनके नाम के अनुसार सिद्ध, श्रुत आदि की विशेषताएं बताते हुए उन्हें नमस्कार किया गया है।

८. **रयणसार**—कुछ विद्वान् इसे आचार्य कुन्दकुन्द की रचना मानते हैं और कुछ नहीं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कुन्दकुन्द एक अभूतपूर्व प्रतिभाशाली आचार्य थे। उनकी रचना-शैली मौलिक थी। वे दिगम्बर परम्परा के संपोषक, संरक्षक, प्रचारक, प्रसारक एक महान् विभूति थे जिनका उपकार कभी भुलाया नहीं जा सकता।

उनका जन्म कुछ शिलालेखों के अनुसार माघशुक्ला ५ (बसन्त पंचमी), ईसा पूर्व १०८ में हुआ था। ४४ वर्ष की आयु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ईसा पू. ६४) में उन्होंने आचार्य पद प्राप्त किया और ९५ वर्ष १५ दिन की आयु में पौष बुदि ५, ईसा पू. १२ को वे स्वर्गवासी हुए। इस प्रकार उनके स्वर्गवास को २००० वर्ष व्यतीत हो रहे हैं। इसी अवसर पर देश भर में उनके द्विसहस्राब्दि समारोह मनाने के उपक्रम हो रहे हैं। आशा की जानी चाहिये कि ये उपक्रम हमें सम्यक् दृष्टि प्रदान करेंगे और तब सच ही कुन्दकुन्द समारोह का यह आयोजन हम सबके लिए मंगलमय होगा।

'मंगलं कुन्दकुन्दार्यो' के रूप में किया गया मंगलाचरण कल्याणकारी हो इसी पवित्र भावना के साथ—

आचार्य कुन्दकुन्ददेव को शत-शत नमन है।

कुन्दकुन्द-स्तुति

जासके मुखारविन्दतें प्रकास भासवृन्द,
स्याद्वादजैनवैन इंदु कुन्दकुन्दसे।
तासके अभ्यासतें विकाश भेदज्ञान होत,
मूढ सो लखे नहीं कुबुद्धि कुन्दकुन्दसे॥
देत है अशीस शीसनाय इंदु चंद से जहि,
मोह-मार-खंड मारतंड कुन्दकुन्दसे।
विशुद्धिबुद्धिवृद्धिदा प्रसिद्ध ऋद्धिसिद्धिदा,
हुए, न हैं, न होंहिंगे, मुनिंद कुन्दकुन्दसे॥

—कवि वृन्दावनदास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वोदयतीर्थमिदं तवैव

—आ० समन्तभद्र

हे भगवन् ! आपका तीर्थ ही सर्वोदय/सबका कल्याण करनेवाला है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org